

राष्ट्रमाता कस्तूरबा

सस्ता साहित्य मण्डल नई दिल्ली

राष्ट्रमाता कस्तूरबा

[कस्तूरबा गांधी की बोध-प्रद और सरल जीवनी]

लेखक

बाबूराव जोशी

१९६९

सस्ता सहित्य मण्डल, नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

चौथी बार : १९६९
मूल्य
एक रुपया पचास पैसे

उत्तर प्रदेश गांधी जन्म-शताब्दी समिति,
लखनऊ के लिए प्रकाशित विशेष संस्करण

मुद्रक
शारदा प्रिंटिंग प्रेस, नयागांव,
लखनऊ

प्रकाशकीय

बालोपयोगी जीवनियों की इस माला की पहली पुस्तक 'सबके बापू' पाठक पढ़ चुके हैं और उसको पाठकों ने पसन्द किया है। यह इसीसे स्पष्ट होता है कि उसके कई संस्करण हो चुके हैं। पर बापू की जीवनी बिना कस्तूरबा की जीवनी के कुछ अधूरी-सी है। बल्कि जो यह कहा जाता है उसमें बहुत सचाई है कि महात्मा गांधी जिस ऊंचाई पर पहुंचे वहां तक पहुंचाने में कस्तूरबा का बहुत बड़ा हाथ था। उनकी जीवनी के बिना यह माला अधूरी रहती। अतः हमें प्रसन्नता है कि कस्तूरबा की जीवनी इस माला में निकल रही है। यदि राष्ट्रमाता की यह छोटी-सी जीवनी हमारे देश की बालिकाओं के जीवन को बनाने और प्रौढ़ स्त्रियों के मार्ग-दर्शन में कुछ भी उपयोगी हो सकी तो हम इसके प्रकाशन को सफल समझेंगे। हमें विश्वास है कि अन्य जीवनियों की भांति हमारा यह प्रकाशन भी पाठकों के सहयोग से अवश्य सफल होगा।

—मंत्री

विषय-सूची

राष्ट्रमाता कस्तूरबा

: १ :

जन्म और विवाह

"बा का जबरदस्त गुण था मुझमें समा जाना। प्रारंभ में वह बड़ी हठीली थी। मेरे दबाव डालने पर भी अपनी मरजी की ही बात करती थी। अतः हममें कड़वाहट पैदा हो जाती थी, हम लोगों में झगड़ा हो जाता। लेकिन जैसे-जैसे मेरा जीवन उज्ज्वल बनता गया, उनका भी जीवन उज्ज्वल बनता गया। जैसे-जैसे मेरा विकास होता गया, उनका भी विकास होता गया। उनके स्वभाव से हठीलापन कम होने लगा। लड़ाई-झगड़े के अवसर कम आने लगे। वह मुझमें समाती गई। वह मेरे विचारों से एक-रूप हो गई, मेरे काम में तदाकार हो गई। शायद यह भारत की मिट्टी का, भारतीय संस्कृति का, हिन्दू-धर्म का असर था।"

—महात्मा गांधी

कस्तूरबा का पूरा नाम कस्तूरबाई था। उनका जन्म सन् १८६९ में पोरबन्दर (गुजरात) में हुआ था। छः महीने बाद इसी नगर में मोहनदास गांधी का भी जन्म हुआ। कस्तूरबाई गांधीजी से छः महीने बड़ी थीं। उनके पिता का नाम था गोकुलदास मनकजी और गांधीजी के पिता का नाम था करमचन्द गांधी। कस्तूरबा की माता का नाम था व्रजकुंवरबाई और गांधीजी की माता का नाम था पुतलीबाई। उस समय कौन जानता था कि कस्तूरबाई और मोहनदास गांधी का विवाह हो

जायगा और आगे जाकर ये दोनों गुजरात का ही नहीं सारे भारत का नाम संसार में चमका देंगे ? कौन जानता था कि ये दोनों हमारे राष्ट्रपिता और राष्ट्रमाता हो जायंगे ?

किसीके मन में यह विचार आता भी कैसे ? कस्तूरबा साधारण वैष्णव परिवार में पैदा हुई थीं। उनके पिता साधारण व्यापारी थे। बचपन में उन्हें पढ़ाया-लिखाया नहीं गया, उन्हें किसी स्कूल में भर्ती नहीं कराया गया था। खाना बनाना, सीना-पीरोना और घर का काम-काज ही उन्हें सिखाया गया था। लेकिन पढ़ी-लिखी न होने के कारण यह मत समझिये कि कस्तूरबाई ने कोई गुण प्राप्त नहीं किया था, या उन्हें अच्छे संस्कार व अच्छा वातावरण नहीं मिला। बल्कि माता-पिता से उनको सरलता और सौम्यता मिली; परिवार से संकल्प-शक्ति और निष्ठा मिली; वातावरण से धार्मिकता और संयम मिला।

गोकुलदासजी व्यापारी थे और करमचन्दजी दीवान। दोनों में प्रेम और सौहार्द्र था। इस प्रेम ने ही कस्तूरबाई की सगाई मोहनदास से करवा दी। अभी दोनों छोटे ही थे। मोहनदास साढ़े छः वर्ष के थे और कस्तूरबाई सात वर्ष की। सगाई के छः वर्ष बाद विवाह की तैयारी होने लगी। नये-नये कपड़े सिलने लगे। बढ़िया-बढ़िया मिठाइयां बनने लगीं। सुन्दर-सुन्दर गीत और नृत्य होने लगे। पर दोनों यह नहीं समझते

थे कि विवाह किसे कहते हैं, उसकी जिम्मेदारी क्या है। लेकिन दोनों खुश थे। दोनों ही सोच रहे थे मिठाइयां खायेंगे, नये-नये कपड़े पहनेंगे, अच्छे-अच्छे बाजे बजेंगे औरे रोज-रोज जुलूस निकलेंगे।

विवाह का दिन आया। दोनों मंडप में बैठे, फेरे हुए, एक दूसरे को कंसार खिलाया और विवाह हो गया। वे दोनों एक साथ रहने लगे। लेकिन वे एक दूसरे से कुछ डरते-से थे, शरमाते थे। वे नहीं जानते थे कि एक दूसरे से बातें कैसे करें और करें तो बात क्या करें ?

किन्तु जैसे-जैसे दिन बीतने लगे वे एक दूसरे को पहचानने लगे और एक दूसरे के नजदीक आने लगे। मोहनदास पति थे। हिन्दू-संस्कृति में पति को पूज्य माना जाता है, वह पत्नी का पथ-प्रदर्शक समझा जाता है। मोहनदास सोचने लगे कि मैं कस्तूरबाई का पति हूं। उसे मेरे बताये हुए रास्ते पर चलना चाहिए। मैं जो कुछ सीखूँ उसे भी वह सीखना चाहिए। मैं जो कुछ पढ़ूं उसे भी वह पढ़ना चाहिए। दोनों की आदर्श जोड़ी बने।

लेकिन गांधीजी की यह इच्छा पूरी न हो सकी। बात यह थी कि उन दिनों पर्दा-प्रथा बहुत प्रचलित थी। कस्तूरबाई किसीके सामने गांधीजी से बोल नहीं सकती थीं। किसीके सामने अपना चेहरा नहीं खोल सकती थीं। रात में थोड़ा-सा समय जरूर मिलता था। लेकिन एक ओर कस्तूरबाई के मन में पढ़ने की इच्छा

पैदा नहीं हुई थी और दूसरी ओर गांधीजी में धीरज नहीं आया था।

इन्हीं दिनों गांधीजी को कुछ छोटी-छोटी किताबें पढ़ने को मिलीं। इनमें पति-पत्नी के प्रेम पर, किफायत-शारी पर, एक पत्नीव्रत पर बहुत-सी बातें लिखी हुई थीं। गांधीजी को ये बातें बड़ी पसन्द आईं। उन्होंने इनपर अमल करने का निश्चय किया।

लेकिन इससे एक बुराई पैदा हुई। गांधीजी एक ईर्षालु पति बन गये। वह कस्तूरबाई पर निगरानी रखने लगे। उन्होंने कस्तूरबाई से कहा—मेरी इजाजत के बिना किसीसे मत बोलो। मेरी इजाजत के बिना किसी जगह मत जाओ। लेकिन कस्तूरबाई यह कैसे सहन करती? वह तो भोली बालिका-जैसी निःसंकोच इधर-उधर घूम आती। परिणाम यह हुआ कि गांधीजी ने जितनी कड़ाई की कस्तूरबाई ने उतनी ही आजादी ली। गांधीजी जहां जाने से मना करते, कस्तूरबाई वहां जरूर जाती। इस बात को लेकर आपस में कभी-कभी कहा-सुनी हो जाती और मनमुटाव भी हो जाता।

: २ :

विदेश-यात्रा

गांधीजी के मैट्रिक पास हो जाने के बाद उनके परिवार के सलाहकार मावजी दवे की सलाह हुई कि

वह विलायत जाकर कानून का अध्यन करें और बैरिस्टर बनें। गांधीजी को और परिवार के लोगों को भी यह विचार पसन्द आया। लेकिन गांधीजी की मां को यह विचार नहीं जंचा। उनको आशंका हुई कि विलायत जाकर मोहनदास कहीं बिगड़ न जाय, ईसाई न बन जाय और वहां किसी अंग्रेज मेम से शादी-ब्याह न कर ले। गांधीजी ने उनकी शंका का निराकरण किया और ये तीनों बातें न करने की प्रतिज्ञा की। इस पर मां ने इजाजत दे दी। तब सन् १८८८ में ४ सितम्बर को गांधीजी इंग्लैण्ड के लिए रवाना हुए।

इन दिनों कस्तूरबाई की गोद में एक बालक था। इसका नाम हरिलाल था। अब कस्तूरबाई को एक लम्बे समय तक गांधीजी से दूर रहना था। परन्तु पुरानी स्त्रियों की तरह उन्होंने गांधीजी को रोकने का प्रयत्न नहीं किया, और न नई स्त्रियों की तरह उनके साथ चलने का आग्रह ही किया। उन्होंने खुशी-खुशी गांधीजी को विदा दी। ये दिन कस्तूरबाई ने अपनी सास और परिवार की सेवा में बिताये।

शिक्षा प्राप्त करके गांधीजी भारत लौटे। वह बैरिस्टर बन गए थे। लेकिन उनके स्वभाव में वही शंका-शीलता थी। वह कस्तूरबाई को पढ़ाना-लिखाना चाहते थे, नई-नई बातें सिखाना चाहते थे। लेकिन कस्तूरबाई का स्वभाव भी खासा ही था। उन्होंने पढ़ने-लिखने में ज्यादा दिलचस्पी नहीं ली। गांधीजी

बार-बार बिगड़ उठते। लेकिन कस्तूरबाई की सहन-शीलता कमाल की थी। उससे गांधीजी का क्रोध व्यर्थ हो जाता।

भारत आकर गांधीजी ने वकालत शुरू की। लेकिन उनको कोई अनुभव तो था नहीं। वह नये-नये बैरिस्टर थे। नतीजा यह हुआ कि उनकी बैरिस्टरी अच्छी तरह नहीं चली। इसी बीच उन्हें दक्षिण अफ्रीका का बुलावा आ गया। वहां उन्हें एक मुकदमे की पैरवी करनी पड़ी। वहां वह अकेले ही गये थे। कस्तूरबाई को अपने साथ नहीं ले गए थे। इस बार भी कस्तूर-बाई ने गांधीजी को प्रसन्नता से विदा दी।

दक्षिण अफ्रीका की सरकार हिन्दुस्तानियों पर बड़े जुल्म कर रही थी, और भारतीयों के साथ भेदभाव की नीति बरत रही थी। गांधीजी से यह सहन नहीं हुआ। उन्होंने सरकार से लड़ने का निश्चय किया और इस भेदभाव का विरोध किया। तीन वर्ष तक वह इसी काम में लगे रहे। तीन वर्ष बाद वह कुछ समय के लिए भारत आये। उन्होंने अब अफ्रीका में ही रहने का निश्चय किया। इस कारण इस बार वह कस्तूरबाई को भी अपने साथ ले गये।

कस्तूरबाई और गांधीजी आठ दिन तक जहाज में यात्रा करते रहे। नवें दिन वे दक्षिण अफ्रीका पहुंचे। डरबन के बन्दरगाह पर जहाज खड़ा हुआ। यात्री उतरने लगे और अपने-अपने स्थान पर जाने लगे।

लेकिन गांधीजी को सूचना दी गई कि वह जहाज से न उतरें, क्योंकि अफ्रीका के गोरे निवासी उनके हिन्दुस्तान में दिये गए कुछ भाषणों से बड़े नाराज हैं। उनका खयाल है कि गांधीजी अपने साथ बहुत से हिन्दुस्तानियों को लाये हैं और नेटाल प्रांत को हिन्दुस्तानियों से भर देना चाहते हैं। इससे गोरों के विशेष अधिकार समाप्त हो जाते और उनको नुकसान होता। अब तक जो अधिकार वे भोगते थे, उनमें हिन्दुस्तानी भी अपना भाग मांगने लगे। गांधीजी विचार में पड़े। वह सोचने लगे—जहाज पर से अभी उतरें या रात के समय। उनके एक बैरिस्टर मित्र ने कहा—"रात के समय जाना कायरता होगी। उससे विरोधियों का साहस बढ़ेगा। वे और ज्यादा अत्याचार करने लगेंगे। उससे आपके आदर्श को भी धक्का लगेगा।" गांधीजी को यह बात ठीक लगी। उन्होंने कस्तूरबाई और बच्चों को तो पहले भेज दिया। बाद में वह स्वयं अपने बैरिस्टर मित्र के साथ पैदल चल पड़े।

चलते हुए गांधीजी को गोरों ने पहचान लिया और भीड़ इकट्ठी हो गई। किसीने पत्थर फेंके और किसीने अण्डे; किसीने लात मारी तो किसीने घूंसे। बैरिस्टर मित्र को खींचकर गांधीजी से अलग कर दिया। मारनेवाले सब थे, बचानेवाला कोई नहीं। इतने में ही सौभाग्य से वहां के पुलिस अफसर की पत्नी उधर से गुजरी। उसने यह गड़बड़ी देखी। वह गांधीजी को पहचान

गईं। तुरंत ही वह भीड़ के बीच में जा पहुंची और मारनेवालों को रोका। इसी बीच में पुलिस भी आ पहुंची। उसने गांधीजी को अपनी सुरक्षा में उनके स्थान पर पहुंचा दिया।

गांधीजी पारसी सेठ रुस्तमजी के घर पहुंच गए। भीड़ भी पीछे-पीछे वहां जा पहुंची। उसने रुस्तमजी का घर घेर लिया। भीड़ चिल्लाने लगी—"गांधी को दे दो नहीं तो घर में आग लगा दी जायगी।" रुस्तमजी बड़े परेशान हुए; गांधीजी भी बड़े परेशान हुए। पुलिसवाले भी परेशान हो रहे थे। आखिर सबने हिकमत से काम लिया। भेस बदल कर गांधीजी को दूसरी जगह पहुंचाया गया। कुछ समय बाद गांधीजी को वहां न पाकर लोग बिखर गए।

कस्तूरबाई के लिए यह पहला अनुभव था। अपने पति को परदेश में इस प्रकार संकट में देखकर उनको कितनी चिन्ता और परेशानी हुई होगी इसकी कल्पना करना कठिन नहीं है।

: ३ :

नये-नये प्रयोग

दक्षिण अफ्रिका में गांधीजी का जीवन एक प्रयोगशाला बन गया। उन्होंने सार्वजनिक और घरेलू जीवन में कई प्रयोग किये। कस्तूरबाई इन प्रयोगों से कैसे दूर

रहतीं ? बल्कि उनको इन सबमें पूरी तरह हाथ बंटाना पड़ा।

अंग्रेज धोबी समय से कपड़े नहीं धोता था। गांधीजी ने कहा—"यह धोबी की गुलामी है। इस गुलामी से मुक्त होना चाहिए।" उन्होंने अपने हाथ से ही कपड़े धोने का निश्चय किया। वह हाथ से कपड़े धोने लगे। कस्तूरबाई ने भी कपड़े धोना सीखा। धीरे-धीरे दोनों इस काम में कुशल और स्वावलम्बी बन गए।

अब ब्रह्मचर्य पालन का विचार आया। गांधीजी ने सोचा, लोकसेवा के लिए संयमी जीवन—ब्रह्मचर्य बड़ा जरूरी है। उन्होंने कस्तूरबाई को यह विचार बताया। कस्तूरबाई ने कोई विरोध नहीं किया; बल्कि खुशी-खुशी अपनी स्वीकृति दे दी।

ब्रह्मचर्य के साथ सादगी और सात्विकता आई; स्वावलम्बन और त्याग आया। कस्तूरबाई उसमें भी गांधीजी की संगिनी बनीं। उन्होंने सादगी और सात्विकता को, स्वावलम्बन और त्याग को पूरी तरह अपनाया। लेकिन इसके लिए उनको बहुत कष्ट सहना पड़ा और अपने मन को बहुत मारना पड़ा। जो बात उनके स्वभाव और संस्कार के विरुद्ध थी, उसके अनुकूल अपने को बनाना पड़ा। उसके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

सन् १९०१ में गांधीजी ने भारत लौटने का निश्चय किया। दक्षिण अफ्रीका के लोगों को यह अच्छा

नहीं लगा। उन्होंने उनसे वहीं रहने का आग्रह किया। लेकिन गांधीजी तो निश्चय कर चुके थे। अफ्रीका के मित्रों ने भारी दिल से विदा दी। विदाई के उपलक्ष्य में बड़े-बड़े समारोह किये गए। किसीने अभिनन्दन-पत्र भेंट किया तो किसीने आभूषण। किसीने मूल्यवान अंगूठी भेंट की तो किसीने हार। पर गांधीजी तो सादगी से रहने का निश्चय कर चुके थे। रात भर जगते-जगते बीती। वह सोचते रहे—'लोक-सेवक के पास गहने कैसे ? उसे तो अपरिग्रही होना चाहिए; त्यागी होना चाहिए। लेकिन बच्चों को यह बात कैसे समझाई जाय ? कस्तूरबाई को यह बात कैसे समझाई जाय ?' गांधीजी ने बच्चों को समझाया। वे मान गए। उन्होंने कस्तूरबाई को समझाया। पर वह नहीं मानीं। बोलीं—"हमें गहनों की जरूरत नहीं है, पर बहुओं को तो होगी। उनके लिए गहने रखने में क्या बुराई है ?" गांधीजी ने कहा—"अभी तो लड़के छोटे हैं। जब बहुएं आयेंगी तब देखा जायगा।" कस्तूरबाई ने कहा—"मैं तुम्हें जानती हूं। तुमने मुझे ही गहने नहीं पहनने दिए तो उनके लिए क्यों बनवाने लगे ? यह भेंट प्रेम से दी गई है। मैं इसे नहीं लौटाऊंगी।" गांधीजी ने कहा—"यह भेंट लोगों ने प्रेम से अवश्य दी है। लेकिन मेरी सेवा के लिए दी है या तुम्हारी ?" कस्तूरबाई को यह उत्तर चुभा। वह बोलीं—"क्या मैंने कोई सेवा नहीं की ? मैंने रात-दिन मजदूर की तरह काम नहीं किया क्या ? मैंने

भी कष्ट सहे हैं। मैं जेल भी गई हूं। क्या यह मेरी सेवा नहीं है ?"

कस्तूरबाई की बात ठीक थी। लेकिन गांधीजी को तो गहने लौटाने थे। उन्होंने गहने लौटा दिये। कस्तूरबाई को यह अच्छा नहीं लगा। लेकिन वह कुछ नहीं बोलीं। उन्होंने सब-कुछ सह लिया। यही उनकी विशेषता थी, यही भारतीय नारी का आदर्श है।

कस्तूरबाई ने कैसे-कैसे परिवर्तन अपने अंदर किये इसकी एक घटना सुनिये। उन दिनों गांधीजी वकालत करते थे। क्लर्क लोग उनके साथ ही रहते थे। इन क्लर्कों में कोई हिन्दू होता तो कोई ईसाई। पर गांधीजी तो ईसाई, हिन्दू मुसलमान आदि में कोई भेद नहीं रखते थे ऊंच-नीच का भी कोई भेद नहीं मानते थे, पर कस्तूरबाई के संस्कार तो पुराने थे। वह सबको समान कैसे समझतीं ?

ईसाई क्लर्क के माता-पिता पंचम जाति के थे। वहां घर के कमरों में मोरी नहीं होती थी। पेशाब के लिये कमरों के अंदर बरतन रखे जाते थे। रात के समय लोग उनमें पेशाब करते और सुबह उन्हें स्वयं साफ कर लिया करते। ईसाई क्लर्क नया था। उसने अपने कमरे का पेशाव का बरतन साफ नहीं किया। कस्तूरबाई को यह काम करना पड़ा। किसी ऊंची जाति के आदमी के पेशाब का बरतन होता तो उन्हें आपत्ति न होती। घर के आदमी के पेशाब का बरनत होता तो

आपत्ति का प्रश्न ही नहीं उठता; लेकिन यह तो पंचम जाति के आदमी की पेशाब का बरतन था ! इसे वह कैसे साफ करतीं ? उन्होंने इन्कार कर दिया । इस पर गांधीजी स्वयं उसे उठाने लगे । इसे भी वह कैसे देखतीं ? पत्नी के रहते पति ऐसा काम भला कैसे करे? यह भी उनके संस्कार के विरुद्ध था । उन्होंने बरतन गांधीजी के हाथ से ले लिया। आंखों में आंसू भरे और गुस्सा भरे हुए मन से बरनत साफ किया।

पर गांधीजी को यह तरीका पसन्द नहीं आया । उन्हें यह अच्छा नहीं लगा कि सेवा का काम भी कोई गुस्से से या अनमने मन से करे। वह बोले--"मेरे घर में यह बखेड़ा नहीं चलेगा । मैं यह गुस्सा नहीं सह सकता" । कस्तूरबाई को तो गुस्सा था ही। वह भी तेज हो गईं और बोलीं—"लो संभालो अपना घर। मैं भी यहां नहीं रहूंगी। यह मैं चली ।" गांधीजी को यह बात तीर की तरह चुभी । वह भी गुस्से में भरकर आगे बढ़े । उन्होंने कस्तूरबाई का हाथपकड़ा और कहा—"जाओ। निकल जाओ मेरे घर में से ।

कस्तूरबाई सन्न रह गईं। परदेश में कहां जायें। किसके घर रहें ? मालूम नहीं था कि बात इतनी बढ़ जायगी । बोलीं—"तुम्हें तो शरम नहीं है । लेकिन मुझे तो है। यहां परदेश में किसके यहां मैं जाऊंगी ? किसके यहां रहूंगी। लोग हमें क्या कहेंगे? सारी इज्जत मिट्टी में मिल जायगी । दरवाजा बंद करो ।" गांधीजी भी

शरमाये। उन्होंने दरवाजा बन्द कर लिया। झगड़ा शान्त हो गया।

पर बाद में गांधीजी को अपनी भूल मालूम हुई, और उसपर उन्हें बड़ा पछतावा भी हुआ।

: ४ :

घरेलू जीवन

दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी जोहान्सबर्ग शहर में रहते थे। वहां वह वकालत करते थे। उन दिनों वह एक बंगले में रहते थे। बंगला छोटा ही था; लेकिन दो-मंजिला था। उसमें आठ कमरे थे। ऊपर की मंजिल पर एक लम्बा-चौड़ा बरामदा था। यह बड़ा हवादार था। गर्मी में सब लोग यहीं सोते थे। बंगले के आसपास अहाता था। अहाते के अन्दर बागीचा था।

गांधीजी के परिवार में तीन बच्चे और एक रिश्तेदार थे। श्रीपोलक और उनकी पत्नी भी उनके साथ ही रहते थे। सुबह छः बजे घर के सब लोग चक्की चलाते। चक्की से आटा तो मिलता ही, व्यायाम भी हो जाता था। इसके बाद रस्सी कूदने का व्यायाम होता। गांधीजी इसमें बड़े कुशल थे।

रात का भोजन सब लोग साथ-साथ करते थे। बापू को मेहमानदारी का बड़ा शौक था। हर रोज एक-दो मेहमान उनके यहां आते रहते थे। भोजन बड़ा

सादा होता था। मेज पर सब चीजें सजा ली जातीं और सब लोग एक साथ बैठकर भोजन करते थे। परोसने का काम सब लोग अपने हाथ से ही कर लेते थे। भोजन में २-३ साग होते, दाल और कढ़ी रहती और करारी सिकी हुई रोटियां रहतीं। मूंगफली का मक्खन और सागों का कचूमर रहता था। दूसरी बार दूध और फल परोसे जाते थे। अन्त में काफी या लेमनेड। भोजन के समय बातचीत और गपशप होती रहती। इस प्रकार लगभग एक घंटा लग जाता था।

एक बार कुछ यूरोपियन मेहमान आये। गांधीजी से उनकी अच्छी जान-पहचान नहीं थी। बा (कस्तूर-बाई अब सबकी बा—'मां'—हो गई थीं) तो उनको जानती ही नहीं थी। शाम के समय सब भोजन करने बैठे। उन्होंने गांधीजी से घरेलू जीवन के बारे में उलटे-सीधे प्रश्न किये। इन प्रश्नों में असभ्यता और उच्छृङ्खलता थी। गांधीजी तो शान्ती से जवाब देते रहे। भारतवासियों के रीति-रिवाज पर वह बहुत हंसे। बा से यह सहन नहीं हुआ। वह उठकर चली गईं। गांधीजी ने उन्हें बुलाया पर वह नहीं आईं। गांधीजी स्वयं बुलाने गये इसपर भी वह नहीं आईं। दूसरे दिन श्रीमती पोलक के पूछने पर उन्होंने कहा—"मैं ऐसे असभ्य लोगों के पास बैठना और उनसे बातें करना पसन्द नहीं करती।"

बा को एक बार रक्त-स्राव की बीमारी हो गई

थी। उनका शरीर बहुत कमजोर हो गया था। डाक्टरों से सलाह ली गई। उन्होंने कहा कि शल्य-क्रिया (आपरेशन) करनी पड़ेगी। लेकिन शल्य-क्रिया में बड़ा दर्द होता है। उसमें खतरा भी रहता है। गांधीजी विचार में पड़े। बा भी परेशान हुईं। लेकिन शल्य-क्रिया के अलावा दूसरा रास्ता नहीं था। अतः शल्य-क्रिया करवाना तय कर लिया।

शल्य-क्रिया हुई। काफी दर्द हुआ; लेकिन बा ने उसे धीरज से सह लिया। गांधीजी जोहान्सबर्ग लौट गये। लेकिन बा का स्वास्थ्य धीरे-धीरे गिरने लग गया। वह निरन्तर कमजोर होने लगीं। विस्तर से उठना-बैठना भी कठिन हो गया। एक बार तो बेहोश भी हो गईं। डाक्टर ने गांधीजी को खबर दी कि "आपकी पत्नी की तबीयत बहुत खराब है, कमजोरी बेहद बढ़ गई है। ताकत के लिए मांस का शोरवा देना पड़ेगा।'

गांधीजी ने कहा—"मैं इसकी इजाजत नहीं दे सकता। मैं मांस खाना और शराब पीना अधर्म मानता हूं। लेकिन बा स्वतन्त्र हैं। वह चाहें तो शोरवा ले सकती हैं।"

डाक्टरने कहा—"बा से यह पूछना ठीक नहीं। अगर शोरवा नहीं दिया जायगा तो हालत बिगड़ जायगी। फिर हमारी जिम्मेदारी नहीं रहेगी।"

गांधीजी डरबन आये। डाक्टर से बातचीत की।

बा से भी बातचीत की । बा बोलीं—"मांस खाना धर्म के विरुद्ध है । उससे शरीर भ्रष्ट होता है, आत्मा भी भ्रष्ट होती है । मैं मर जाना पसन्द करूंगी पर मांस नहीं खाऊंगी ।"

डाक्टर खतरा मोल लेने के लिए तैयार नहीं हुआ । उसने कहा—"बिना मांस दिये यह जिन्दा नहीं रहेंगी । इन्हें आप अपने घर ले जाइये ।" गांधीजी ने फिनिक्स आश्रम ले जाने का निश्चय कर लिया । डरबन से फिनिक्स तक की यात्रा रेल में की गई । स्टेशन से आश्रम तक ढाई मील पैदल चलना था । अतः यह यात्रा बा को झोली में बिठा कर की गई ।

यात्रा में कोई खतरा नहीं हुआ । बीमारी नहीं बढ़ी । भगवान ने बा और बापू (गांधीजी भी सब के पिता—बापू हो गये थे) की सहायता की । प्राकृतिक चिकित्सा प्रारंभ हुई । उससे धीरे-धीरे लाभ होने लगा । थोड़े ही दिनों में बा स्वस्थ हो गईं । जो बात डाक्टर न कर सके वही बा और बापू की निष्ठा ने कर दी ।

इसी प्रकार की दूसरी घटना हिन्दुस्तान में घटी थी, जिसमें गांधीजी बीमार हो गये थे और बा ने अपनी सूझ-बूझ और सेवा से गांधीजी को बचाया था ।

जैसे-जैसे समय बीतता गया, गांधीजी की सेवा-भावना बढ़ती गई । गांधीजी का जीवन शुद्ध और पवित्र बनता गया । वह सत्य और अहिंसा को जीवन में उतारने लगे । उन्होंने सोचा दूध तो जानवरों से मिलता

है और वह उन्हींकी सन्तान के लिए होता है। मनुष्यों को उसका उपयोग करना मानो मांस का ही उपयोग करना है। अतः गांधीजी ने दूध छोड़ दिया। दूध की जगह वे सिकी और कुटी मूँगफली, गुड़ और केले खाने लगे और नीबू-शहद मिलाकर पीने लगे।

लेकिन केवल इन चीजों से कैसे काम चल सकता था? इन चीजों से शरीर को पूरा पोषण मिलना कठिन था। परिणाम-स्वरूप तेल का उपयोग करने लगे। उससे पेचिश हो गई। घंटे-घंटे में दस्त होने लगे। डाक्टरों ने कहा—"दूध या अण्डे लेना चाहिए। मांस का शोरवा भी लेना चाहिए। इनके बिना ताकत नहीं आ सकती। इनके बिना बीमारी से मुक्ति नहीं मिल सकती।"

लेकिन गांधीजी तो दूध तक छोड़ चुके थे। उन्होंने डाक्टरों से कहा—"मैं दूध नहीं लूंगा। दूध के लिए गाय-भैंस पर फूँके की क्रिया की जाती है। इसलिए भी मेरे मन में दूध के लिए नफरत है।"

बा पास ही खड़ी थीं। बोलीं—"बकरी पर तो फूंके की क्रिया नहीं होती। उसका दूध लेने में क्या हर्ज है?" डाक्टरों ने भी इसका समर्थन किया और बकरी का दूध लेने पर जोर दिया। गांधीजी ने यह सलाह मान ली। वह बकरी का दूध लेने लगे, इससे उनकी तबीयत सुधर गई।

पहली घटना में बापू ने बा को बचाया। दूसरी

घटना में बा ने बापू को बचाया। इस प्रकार दोनों का घरेलू जीवन पारस्परिक प्रेम और सात्विकता, संयम और सादगी से ओत-प्रोत था।

: ५ :

सत्याग्रह की ओर

आजकल जेल जाना बड़ा सरल हो गया है। जेलों में अनेक सुधार हो जाने से अब जेलों में कष्ट नहीं होते। लेकिन आज से ५० वर्ष पहले लोग जेल का नाम सुनते ही डरते थे। वे जेल को जीता-जागता नरक मानते थे। वहां खाने-पीने का बड़ा कष्ट होता था। वहां तरह-तरह के शारीरिक और मानसिक कष्ट होते थे। जेल जानेवाले से अपने ओर पराये लोग नफरत करते थे---आज जैसा सत्कार नही करते थे।

सन् १६१३ में दक्षिण अफ्रीका में एक कानून पास हुआ था। इस कानून के अनुसार केवल उन शादियों को ही कानूनी माना गया जो ईसाई धर्म के अनुसार की गई हों किंतु इस्लाम-धर्म और हिन्दू-धर्म, बौद्ध और जैन धर्म के अनुसार की गई शादियों को अवैध माना गया। यह कानून बौद्ध, जैन, हिन्दू और इस्लाम धर्म का अपमान था। यह इन सब धर्मों के लोगों के लिए एक चुनौती था।

गांधीजी ने इस कानून का विरोध किया। उन्होंने

सरकार को समझाया और इस कानून को वापस लेने को कहा। लेकिन सरकार क्यों सुनने लगी ? उसने तो जान-बूझकर यह कानून बनाया ही था। उसका इरादा तो बाहर के देशों से आकर बसे लोगों को परेशान करके दक्षिण अफ्रीका से भगा देना था।

गांधीजी के सामने अब लड़ाई के अलावा कोई रास्ता नहीं रहा। उन्होंने सत्याग्रह करने का निश्चय किया और हिन्दुस्तानी पुरुषों और स्त्रियों को युद्ध के लिए आह्वान किया। लेकिन पुरुषों के लिए जेल जाना उतना कठिन नहीं था जितना स्त्रियों के लिए। इस कारण यह हो सकता था कि स्त्रियाँ घबराकर माफी मांग लें। उस स्थिति में तो लड़ाई कमजोर पड़ सकती थी और उससे सत्याग्रहियों की हार हो सकती थी।

इसलिए गांधीजी ने सब बातें महिलाओं के सामने रखीं। सब कुछ सुनने के बाद उन्होंने कहा—"हम न डरेंगी न घबरायेंगी। हम न माफी मांगेंगी, न लड़ाई को कमजोर बनायेंगी।" कस्तूरबा उन दिनों बीमार थीं। शरीर से कमजोर थीं। गांधीजी ने उनसे बातें कीं और समझाया कि वे सब सोच-समझ कर निश्चय करें। वह बोलीं—"जब आप और बच्चे जेल जा रहे हैं तो फिर मैं कैसे न जाऊं ? सारे हिन्दुस्तानी भाई-बहन जेल जा रहे हैं तो फिर मैं कैसे पीछे रहूं ? मैं सारे कष्ट सह लूंगी, लेकिन माफी न मांगूंगी। मैं सारी परेशानी सह लूंगी लेकिन सत्याग्रह के

नियम नहीं तोड़ूंगी। यदि मैं हार कर छूट आऊं तो मुझे घर मत आने देना। यदि मैं माफी मांग कर आऊं तो मुझे कड़ी-से-कड़ी सजा देना।"

कस्तूरबा की इन वीरता-भरी बातों से उन्हें भी सत्याग्रह करने की अनुमति मिल गई।

लड़ाई शुरू हुई। बा ने सत्याग्रह किया। उनके साथ तीन अन्य बहनों ने भी सत्याग्रह किया। चारों जेल भेज दी गई। जेल में बड़ा खराब खाना मिला। वहां के कपड़े गन्दे थे। बरतन भी गन्दे थे। बा ने जेलर से कहा—"मैं ऐसा गन्दा खाना नहीं खाऊंगी। मेरे लिए फलों का प्रबन्ध कर दीजिए।" जेलर ने उनकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। एक दिन बीता। दो दिन बीते। तीसरा और चौथा दिन भी बीत गया। लेकिन पाँचवें दिन सबकी आँखें खुलीं। उन्होंने अनुभव किया कि कस्तूरबा के साथ अत्याचार हो रहा है। उन्हें फल देना चाहिए। फल दिये गए और बा ने उपवास तोड़ दिया। बा की दृढ़ता ने अधिकारियों को झुका दिया।

जेल में बा तीन महीने तक रहीं। लेकिन उनको प्रतिदिन जितने फल मिलते थे वे कम पड़ते थे। इतने में तो भूखे ही रहना पड़ता था। परिणाम-स्वरूप बा कमजोर होने लगीं। उनकी हड्डी-हड्डी दिखाई देने लगी। वह बीमार हो गईं। जेल से छूटने पर गांधीजी ने उनका फिर इलाज किया। बड़ी सेवा-सुश्रूषा की गई। तब जाकर उनका स्वास्थ्य सुधरा।

बा की इस दृढ़ता ने बापू के मन में बड़ी इज्जत पैदा कर दी ।

: ६ :

आश्रम-जीवन

दक्षिण अफ्रीका में सफलता प्राप्त करके गांधीजी भारत आये । उनके साथ कस्तूरबा और बच्चे भी भारत आये । अब वे अहमदाबाद के पास आश्रम बना कर रहने लगे । आश्रम साबरमती नदी के किनारे था । अतः उसका नाम साबरमती-आश्रम हो गया । यहां गांधीजी के साथ और भी बहुत से लोग रहते थे ।

भारत में गांधीजी को अंग्रेज सरकार से देश को आजाद कराना था । वह देश की हालत का अध्ययन करने लगे और देश-भक्तों का संगठन करने लगे । इस काम में बड़े त्याग और तप की, बड़े धैर्य और सहनशीलता की जरूरत थी । अतः आश्रम में तपस्वियों-त्यागियों जैसा जीवन प्रारम्भ हुआ ।

गांधीजी का तप तो सूर्य की तरह था । सूर्य से दुनिया को गर्मी मिलती है । दुनिया को प्रकाश और जीवन मिलता है । लेकिन आसपास के लोग तो झुलसते हैं । उन्हें कड़ी परीक्षा देनी पड़ती है । गांधीजी की तपस्या देश के लिए लाभदायक थी, लेकिन आश्रम-वासियों को तो उसकी गर्मी सहन करनी पड़ती थीं—

उन्हें तो कड़ी परीक्षा देनी पड़ती थी। बा इस बात को जानती थीं, इसलिए वह इस आग को खुद सहन कर लेतीं और दूसरों को बचा लेती थीं।

आश्रम में अलग-अलग रसोईघर नहीं थे। सबका भोजन एक ही जगह बनता था और वे सब एक साथ ही भोजन करते थे। वहाँ बाहर से सब्जी नहीं आती थी। आश्रम में पैदा होने वाली सब्जी ही बनती थी। अस्वाद-व्रत का पालन होता था। इस कारण नमक, मिर्च, मसाले का व्यवहार नहीं होता था। जिसे जरूरत होती अलग से नमक डाल लेता था। लेकिन इससे कुछ बहनों को तकलीफ होने लगी। लेकिन गांधीजी से यह बात कौन कहे ? बा को यह बात मालूम हुई। उनसे न रहा गया। उन्होंने गांधीजी से सब बात कह दी। गांधीजी ने आहार में थोड़ा बहुत परिवर्तन करके यह असुविधा दूर करा दी।

इसी तरह आश्रम में सबको कपड़े धोने के लिए बराबर साबुन मिलता था। उसीमें सारा काम चलाना पड़ता था। लेकिन इतना साबुन तो सबको कम पड़ता था। अतः सबने एक अर्जी तैयार की। बा को यह बात मालूम हुई। उन्होंने भी अर्जी पर दस्तखत कर दिये। अर्जी गांधीजी को दी गई और वह मंजूर कर ली गई। इस प्रकार कस्तूरबा ने आश्रम-जीवन में सब बहनों के साथ मिलकर सुख-दुख, सुविधा-असुविधा सबों को समान रूप से सहन किया।

कुछ वर्षों के बाद गांधीजी सेवाग्राम गये। यहाँ भी आश्रम बना। यहाँ भी कार्यकर्त्ता रहने लगे। लेकिन अब गांधीजी काफी प्रसिद्ध हो गए थे। देश और विदेश में बहुत से लोग उनको जानने लगे थे। सेवाग्राम मानो देश की राजनीति का केन्द्र बन गया। देश के कार्यकर्त्ता उनसे सलाह तथा आदेश लेने आते और विदेश के कार्यकर्त्ता तथा नेता उनसे मिलने आते।

सेवाग्राम जाते ही गांधीजी से पहले बा की झोंपड़ी आती थी। अतः सब लोग पहले बा से मिलते फिर बापू से। वे किसीको पहचानती थीं किसीको नहीं। फिर भी सबसे कुशल समाचार पूछतीं। सबका स्वागत करतीं। सबके भोजन का प्रबन्ध करतीं।

आश्रम में सब लोग अपना-अपना काम स्वयं करते थे। सब बारी-बारी से सफाई करते, खाना बनाते तथा दूसरे काम करते। वहाँ कोई नौकर नहीं था। एक दिन एक बहन आश्रम में आईं। उन्होंने बा के साथ भोजन किया। भोजन के बाद सब लोग अपने-अपने बरतन माँजने लगे। लेकिन उस बहन को तो बरतन माँजने की आदत नहीं थी। वह बड़ी परेशान हुई। बा ने यह बात पहचान ली। उन्होंने चट उनकी थाली उठा ली और माँजने लगीं। वह बहन बड़ी सकुचाई और उन्होंने बा को रोका। लेकिन बा ने कहा—"तुमको बरतन माँजने की आदन नहीं है। लेकिन मुझे इसकी आदत है। मेरे लिए एक थाली माँजना कोई बड़ा काम नहीं है। आप

संकोच न करें।" बा ने अपने प्रेमपूर्ण व्यवहार से उस बहन का संकोच दूर कर दिया। इसी तरह वह अनेक बहनों और कितने ही भाइयों की कठिनाई हल करती रहती थीं।

आश्रम को गांधीजी अस्पताल भी कहा करते थे। क्योंकि गाधीजी को बीमारों की सेवा करने का बड़ा शौक था। वे यहां प्राकृतिक चिकित्सा के प्रयोग करते रहते थे। बीमारों की चिकित्सा और सेवा-सुश्रुषा में उन्हें बड़ा आनन्द और शान्ति मिलती थी।

बीमारों के लिए बाहर से फल आते थे। ये फल बाहर के लोग भेंट के रूप में पहुंचाते थे। कभी फल बहुत आ जाते, कभी कम आते थे। आश्रम के व्यवस्थापक बीमारों को ही फल देते थे। ज्यादा आने पर भी तन्दुरुस्त लोगों को फल नहीं मिलते। लेकिन बा को यह बात पसन्द नहीं आती। ऐसे मौकों पर वे सबको फल परोसने के लिए कहतीं। इसी प्रकार बा सब त्यौहारों को भी याद रखती थीं। उस दिन वह सबको कुछ-न-कुछ प्रसाद अवश्य देती थीं। यही कारण था कि सबको बा अपनी मां-जैसी लगती था।

: ७ :

मां की वेदना

हरिलालभाई गांधीजी के सबसे बड़े पुत्र थे।

उनका जन्म सन् १८८८ में भारत में हुआ था। उनका बचपन भारत में ही बीता। ६ वर्ष की आयु में वह गांधीजी के साथ अफ्रीका गये। अफ्रीका में गांधीजी वहांकी सरकार से लड़े। अतः हरिलालभाई की शिक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं हो सकी। गोरों के स्कूलों में भारतीय बालकों के साथ अछूतों-जैसा व्यवहार होता था। गांधीजी इसे कैसे सहन करते! उन्होंने हरिलालभाई को स्कूल नहीं भेजा।

ईसाई मिशनरी की पाठशालाएं भारतीय लोगों के लिए खुली थीं। लेकिन वहांकी शिक्षा में साम्प्रदायिकता थी। वहाँ अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी, अतः वहां भारतीय संस्कार कैसे मिलते? गांधीजी ने हरिलालभाई को मिशनरी की पाठशाला में भी नहीं भेजा।

गांधीजी चाहते थे कि उनके बच्चों को मातृभाषा के द्वारा शिक्षा दी जाय। उन्हें गुजराती भाषा सिखाई जाय और उनपर भारतीय संस्कार डाले जायं। लेकिन दक्षिण अफ्रीका में तो गुजराती शिक्षक मिलना संभव नहीं था। परिणाम यह हुआ कि हरिलालभाई की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध न हो सका।

हरिलालभाई चाहते थे कि वह भी अंग्रेजी पढ़ें, उच्च शिक्षा प्राप्त करें, और बैरिस्टर बनें। लेकिन गांधीजी की इच्छा के विरुद्ध वह कैसे पढ़ते?

हरिलालभाई से न रहा गया। वह सोचने लगे—

"मैंने भी सत्याग्रह किया है। मैं भी तीन बार जेल जा चुका हूं। फिर बापू मुझे क्यों नहीं पढ़ने देते? वह मुझे बैरिस्टर क्यों नहीं बनने देते? क्या यह मेरे प्रति अन्याय नहीं है? मेरी उपेक्षा नहीं है?"

लेकिन गांधीजी अपने विचारों में दृढ़ थे। अतः हरिलालभाई ने भारत जाने का निश्चय किया। बा' को हरिलालभाई से सहानुभूति थी। वह चाहती थीं कि हरिलाल पढ़े। लेकिन बा' की कुछ न चली। हरिलाल-भाई हिन्दुस्तान आये। उन्होंने पढ़ाई प्रारंभ की। लेकिन दो-तीन बार प्रयत्न करने पर भी मैट्रिक की परीक्षा में फेल हो गए। इसके बाद उन्होंने पढ़ने का इरादा छोड़ दिया और काम-धन्धे में लग गए। जब गांधीजी भारत लौटे तब हरिलालभाई कलकत्ता में थे। रौलट ऐक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह के दल में वह भी भर्ती हुए थे। लेकिन कुछ दिनों के बाद उनकी पत्नी का देहांत हो गया। दुख और निराशा ने उनके जीवन को मोड़ दिया। वह गलत रास्ते पर चल पड़े। बा' और गांधीजी ने उन्हें सही रास्ते पर लाने का बड़ा प्रयत्न किया, लेकिन सब व्यर्थ हुआ। बाद में वह मुसलमान बन गए और कुछ दिनों बाद आर्यसमाजी हो गए। जिन्दगी की हाट में वह रास्ता भूल गए और इधर-उधर भटकते रहे।

हरिलालभाई के मुसलमान बनने के समाचार जब बा' को मिले तो उन्होंने दुखी होकर हरिलालभाई को पत्र लिखा—

"चि० हरिलाल,

"मैंने सुना कि तुम मुसलमान हो गए। मद्रास में आधी रात के समय पुलिस ने तुम्हें पकड़ा। उस समय तुम शराब के नशे में चूर थे। मैजिस्ट्रेट ने तुम्हें एक रुपया जुर्माने की सजा दी। यह सजा बहुत कम है। ऐसा करके उसने दया ही दिखाई है। लेकिन क्या यह सब अच्छा है? क्या इससे तुम्हारा जीवन अच्छा बनेगा?

"मैं तो तुम्हें बार-बार समझाती रही हूं। बार-बार कहती रही हूं कि अपने ऊपर नियन्त्रण रखो। अपने को सही दिशा में ले जाने का प्रयत्न करो लेकिन तुमने कोई ध्यान नहीं दिया। तुम तो प्रतिदिन बिगड़ते जा रहे हो। दिन-प्रति-दिन गलत दिशा में जा रहे हो। क्या तुम नहीं जानते कि इससे मुझे बड़ी पीड़ा हुई है? इससे बापूजी को बड़ा दुख हुआ है और अब तो हमारा जीना भी बड़ा कठिन हो रहा है।

"तेरे बापूजी इस बारे में किसी से बात नहीं करते। लेकिन इन आघातों से उनका दिल चूर-चूर हो रहा है। उन्हें बड़ी पीड़ा हो रही है। अपने पिता और माता को पीड़ा देकर क्या तू पाप नहीं कर रहा है? क्या तू हमारे साथ शत्रु-जैसा व्यवहार नहीं कर रहा है?

"मैंने सुना है तू बापूजी की निन्दा और टीका करता है। लेकिन क्या बापूजी की निन्दा तेरी अपनी निन्दा नहीं है? क्या बापूजी की आलोचना तेरी अपनी

आलोचना नहीं है ? क्या यह आलोचना तुझे शोभा देती है ?

"तू नहीं जानता उनके दिल में तेरे लिए कितना प्यार है। तेरी कमजोरियों को जानते हुए भी वह तुझे अपने पास रखने को तैयार हैं। तेरे दुर्गुणों को समझकर भी वह तेरी सार-संभाल करने को तैयार हैं। लेकिन तू तो यह सब समझने का प्रयत्न ही नहीं करता। जहर को वे चुपचाप पी लेते हैं। वह महान हैं, अतः इस शोक को चुपचाप सह लेते हैं। लेकिन मैं तो एक कमजोर स्त्री हूं। मैं इस पीड़ा को—इस बदनामी को नहीं सह सकती।

"प्रतिदिन सुबह उठते ही मुझे डर लगता है कि तेरे बारे में कोई बुरा समाचार न मिले। मैं यही सोचती रहती हूं कि तू कहां रहता होगा, कहां खाता होगा, क्या पहनता होगा, कहां सोता होगा, इन विचारों से मुझे नींद नहीं आती। मुझे चैन नहीं पड़ती।

"सोचती हूं तुझसे मिलूँ। लेकिन तेरा कोई ठिकाना नहीं है। सोचती हूं तुझे समझाऊं, लेकिन तू तो पचास वर्ष से अधिक का हो चुका है। अब तू क्यों समझने लगा ? अब तू हमारी बात क्यों मानने लगा? कहीं मेरी बेइज्जती न हो इसलिए डरती हूं। इसलिए नहीं आती हूं और चुप बैठी हूं।"

इस पत्र में बा' की पीड़ा, बा' का वात्सल्य समाया हुआ है। इसीलिए हरिलालभाई के मन में बा' के लिए

अपार स्नेह भी रहा । वह अपने कामों पर पछताते भी रहे ।

एक बार बा और बापू ट्रेन में सफर कर रहे थे । जब वह कटनी पहुंचे तो उन्हें 'जयनाद' सुनाई दिया । यह जयनाद हजारों लोगों के जयनाद से भिन्न था । यह जयनाद एक ही व्यक्ति कर रहा था । गाड़ी रुकते ही वह व्यक्ति पास आया । वह हरिलालभाई थे । उनके कपड़े फटे हुए थे । शरीर जर्जर हो गया था । सामने के दांत गिर गये थे । बड़ी ही विपन्न अवस्था थी । लेकिन चेहरे पर प्रसन्नता थी । आंखों में चमक थी । पास आकर उन्होंने बा को प्रणाम किया । जेब से एक मोसम्मी निकालकर बोले—"बा यह तुम्हारे लिये लाया हूं ।" बापूजी भी खिड़की के पास आ गये । बोले—"मेरे लिए कुछ नहीं लाया ?"

हरिलालभाई ने कहा—"नहीं । आपसे तो एक बात कहता हूं । आप बा के ही प्रताप से इतने बड़े बने हैं ।"

बापू ने कहा—"तुम्हारा कहना ठीक है । मैं बा के ही प्रताप से इतना बड़ा बना हूं । लेकिन क्या तू हमारे साथ चलेगा ?"

हरिलालभाई बोले—"नहीं । मैं तो बा के दर्शन करने आया हूं ।"

गांधीजी अपनी जगह पर चले गए । बा ने कहा—"यह मोसम्मी कहां से लाया ?"

हरिलालभाई बोले–"मैं कहीं से भी लाया होऊं तुम्हें इससे क्या ? मैं यह प्रेमपूर्वक लाया हूं। मैं यह श्रद्धापूर्वक लाया हूं।"

बा ने मोसम्मी ले ली। हरिलालभाई बोले– "बा, यह मोसम्मी तुम्हें खानी है। जरूर खानी है।" बा ने कहा–"मैं जरूर खाऊंगी।"

हरिलालभाई चुप हो गए। बा भी चुप हो गईं। हरिलालभाई बा को देखते रहे और बा हरिलालभाई को देखती रहीं। बा ने शान्ति-भंग करते हुए कहा– "तेरी यह क्या हालत हो रही है। जरा अपनी हालत तो देख। जरा यह तो सोच कि तू किसका लड़का है? यह तो विचार कि तू किधर जा रहा है। चल, हमारे साथ चल।"

हरिलालभाई बोले–"मैं इस हालत से उबर नहीं सकता बा ! मैं अब तुम्हारे पास नहीं रह सकता।" बा की आंखें छलछला आईं। हरिलालभाई की आंखें भी छलछला आईं। वह बोले–"बा, यह मोसम्मी जरूर खाना।"

बा को याद आई। मन में बोलीं–"अरे, मैंने तो उसे कुछ भी नहीं दिया। बेचारा भूखों मरता होगा। कुछ फल तो दे दूं।" बा डलिया में से फल निकालने लगीं। इसी समय गार्ड ने सीटी दी। जबतक वह खिड़की के पास आईं, गाड़ी प्लेटफार्म पार कर चुकी थी। आंसू भरी आंखों से देखती रहीं। हरिलालभाई बोलते रहे–'माता कस्तूरबा की जय ! माता कस्तूरबा की जय !'

: ८ :

चम्पारन और खेड़ा के सत्याग्रह

भारतवर्ष में आते ही गांधीजी देश के बड़े-बड़े नेताओं से मिले। उन्होंने देश की हालत का अध्ययन किया। देश में गुलामी और अशिक्षा का साम्राज्य था। देश में निर्धनता थी और चरित्रहीनता का बोलबाला था। गांधीजी इन बातों को कैसे सहन करते? उन्होंने इनके विरुद्ध लड़ाई प्रारंभ कर दी।

दक्षिण अफ्रीका में बा जेल गई थीं। वहां उन्होंने सत्याग्रह किया था। लेकिन वहां के सार्वजनिक कार्यों में उन्होंने कोई हिस्सा नहीं लिया था और न वहां के राजनैतिक कामों में उन्होंने कोई दिलचस्पी ली थी। लेकिन भारत में तो उन्होंने सार्वजनिक कामों में भी हिस्सा लिया और राजनैतिक कामों में भी दिलचस्पी ली। जो-जो काम गांधीजी ने उठाये बा उन सबमें सम्मिलित हुईं। जो-जो आंदोलन गांधीजी ने शुरू किये बा उन सबमें शरीक हुईं।

बा को बड़ी-बड़ी सभाओं में भाषण देने और बड़े-बड़े जुलूसों में जाने का शौक नहीं था। वह तो गांधीजी की अनुगामिनी थीं। आजादी की लड़ाई की एक सैनिक थीं। अतः जहां असली सेवा की जरूरत होती और जहां रचनात्मक काम होता वह जरूर पहुंच जातीं।

गांधीजी ने पहली लड़ाई चम्पारन में छेड़ी। चम्पारन बिहार प्रांत का एक जिला हैं। यहां निलहे गोरे भारतीय किसानों पर बड़ा अत्याचार करते थे। गोरों को उसमें बड़ा लाभ था। पर किसान तो परेशान थे। उन्हें इससे बड़ा नुकसान होता था।

किसानों ने पुकार की। गांधीजी ने उनकी पुकार सुनी। उन्होंने किसानों का पक्ष लिया और उनकी हिम्मत बंधाई। सत्याग्रह किया गया और अंत में किसानों की जीत हो गई। गोरों के अत्याचार बन्द हो गए।

पर गांधीजी ने अनुभव किया कि केवल लड़ाई जीत लेना ही काफी नहीं है। लोगों को शिक्षित, जाग्रत और उन्नत भी बनाना चाहिए। अतः उन्होने ग्राम-सेवा की एक योजना बनाई। प्रत्येक ग्राम में कार्यकर्त्ता भेजने का निश्चय किया।

गांधीजी की अपील पर महाराष्ट्र, गुजरात और साबरमती आश्रम से कुछ कार्यकर्त्ता आ गये। सबको गांवों में भेजकर ग्राम-सेवा का काम सौंप दिया गया। बा को भी तिहरवा ग्राम में रखा गया। यहां एक छोटीसी झोंपड़ी बनाई गई। बा उसमें रहकर बच्चों को पढ़ाने लगीं। पढ़ाने के लिए एक और झोंपड़ी बनाई गई। उस गांव में सफाई, शिक्षा और गरीबों को दवा आदि देने का काम वह करने लगीं।

यह गांव हिमालय की तलहटी में था, अतः यहां काफी सर्दी पड़ती थी। पास ही एक निलहे गोरे की

कोठी थी। यह गोरा बड़ा बदनाम था। शहर से दूर होने से कारण यहां बहुत सी चीजें नहीं मिलती थीं। लेकिन बा शान्ति और सेवा-भाव से अपना काम करती रहीं।

एक दिन बा पास के गांव में दवा बांटने गईं। जब लौट कर देखा तो झोंपड़ी जल गई थी। बा और उनके साथी रात भर जागते रहे। दूसरे दिन उन्होंने रहने के लिए फिर से बांस की झोंपड़ी बनाई और वहीं रहने लगीं। एक भी दिन सेवा का काम बन्द नहीं होने दिया।

जब चम्पारन में काम चल रहा था तभी गुजरात के खेड़ा जिले में सत्याग्रह छिड़ गया। वहां मामलतदारों ने किसानों पर बड़ा अत्याचार किया था। उन्होंने छापा मारकर २३ घरों को जब्त कर लिया था। किसानों के जेवर, कपड़े और बरतन आदि भी जब्त कर लिये।

किसानों की सहायता के लिए गांधीजी गये और उनके पीछे-पीछे बा भी वहां पहुंच गईं। वहां बा ने स्त्रियों को ढाढ़स बंधाया। स्त्रियों की सभा में भाषण देते हुए उन्होंने कहा—"हमारे पुरुषों ने सत्य और न्याय के लिए सरकार से लड़ाई ठानी है। अतः हमें उनको हिम्मत बंधाना चाहिए और उत्साह दिलाना चाहिए। यदि सरकार हमारे जेवर जब्त करे तो करने देना चाहिए। यदि सरकार मकान और जानवर जब्त करे तो करने देना चाहिए। यदि सरकार जेल भी भेजे तो

हमें जेल चला जाना चाहिए। लेकिन सरकार को लगान नहीं देना चाहिए । लगान के बिना सरकार कबतक काम कर सकेगी । सहयोग के बिना सरकार कबतक टिकी रहेगी ? अन्यायी सरकार एक दिन झुकेगी ही।"

बा के भाषण से लोगों में उत्साह का संचार हुआ। वे दूने उत्साह से सरकार से लड़ने लगे । अन्त में सरकार को हारना पड़ा और किसानों की बात माननी पड़ी।

: ६ :

असहयोग आन्दोलन में भाग

सन् १९२० में गांधीजी ने अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ाई छेड़ी । सन् १९२२ में वह गिरफ्तार कर लिये गये । उनको छः वर्ष की सजा दी गई । इस खबर से चारों ओर सनसनी फैल गई। लेकिन बा ने एक वीरांगना की तरह इस घटना को सहन किया। उन्होंने देश के नाम संदेश देते हुए कहा—"मेरे पति को छः वर्ष की सजा दी गई है । यह एक बहुत बड़ी सजा है। इस सजा से मैं बेचैन हुई हूं । लेकिन परेशान और बेचैन होने से तो कोई काम नहीं बनता । उससे तो काम बिगड़ता है । अतः सब लोग रचनात्मक काम में लग जाइए । खादी पहनिये और स्वदेशी वस्तु काम में लीजिये । विदेशी कपड़ा छोड़ दीजिये । तभी गांधीजी को

अच्छा लगेगा। तभी देश का भला होगा। इसीसे गांधीजी की सजा कम होगी और वह जेल से छूट सकेंगे।"

कस्तूरबा के इस सन्देश का अच्छा असर हुआ। देश भर में खादी और चर्खे का काम फैलने लगा और स्वदेशी और शराब-बन्दी का काम तेज हो गया। कस्तूरबा ने शहर-शहर और गांव-गांव घूम कर इस काम को आगे बढ़ाया।

सन् १९३० में गांधीजी ने दूसरी बड़ी लड़ाई छेड़ी। उन्होंने नमक कानून तोड़ने के लिए डांडी तक पैदल यात्रा करने की घोषणा की।

आश्रम की बहनों ने गांधीजी से पूछा, "हम क्या करें?" देश की बहनों ने पूछा, "इस आन्दोलन में हम किस प्रकार योग दें?" गांधीजी ने कहा—"इस समय आपको कानून भंग करके जेल नहीं जाना है। बल्कि शराब की दूकानों पर, विदेशी कपड़ों की दूकानों पर धरना देना है। खादी का और स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार करना है।"

इस काम के लिए 'स्वराज्य-संघ' नामक संस्था की स्थापना हुई। बहनों की भर्ती होने लगी। कस्तूरबा ने यह काम अपने ऊपर ले लिया। उनका नाम सुन कर बहुत सी बहनें भर्ती होने लगीं। धनी, गरीब सब स्त्रियां भर्ती हुईं। इस काम में पढ़े-लिखे लोगों के घरों की और पिछड़े हुए लोगों के घरों की स्त्रियां भी आईं।

इन बहनों ने शराब की दूकानों पर धरना दिया। शराब की बिक्री बन्द हो गई। दूकानदार परेशान हुए। सरकार परेशान हुई, शराब पीनेवाले परेशान हुए। यह देखकर सरकार ने शराब फेरी लगाने की इजाजत दे दी। बहनों ने इसके विरुद्ध भी प्रचार करना प्रारंभ किया। वे घर-घर जाकर लोगों को समझाने लगीं। घर-घर जाकर शराब का विरोध करने लगीं। अब तो सरकार और भी परेशान हुई। उसने बहनों के रहने की झोंपड़ियां जला दी। उसने केम्प का सामान जब्त कर लिया। लेकिन बहनों ने हिम्मत नहीं छोड़ी। उन्होंने चटाई की नई झोंपड़ियां बना लीं। मिट्टी के बरतन खरीद लिये और वहीं अपना काम चलाने लगीं।

इसी समय खबर मिली कि गांधीजी गिरफ्तार कर लिये गए हैं और उन्हें जेल भेज दिया गया है। कस्तूरबा ने देश को संदेश देते हुए कहा—

"पिछले ४-५ सप्ताह में गांधीजी ने बहुत-सी बातें कही हैं। उन्होंने हमें सही रास्ता बताया है। अतः हमें उनके दिखाये हुए रास्ते पर चलना है।

"मैंने सुना कि गांधीजी को गिरफ्तार करने के लिए दो मोटरें भरकर सिपाही आये थे। ये सिपाही अपने साथ बहुत से हथियार लाये थे। और आधी रात के समय गांधीजी के पास पहुंचे थे। इन्होंने आसपास घेरा डालकर गांधीजी को गिरफ्तार किया। मुझे यह

सब सुनकर बड़ी हँसी आई। गांधीजी को तो एक ही सिपाही गिरफ्तार कर सकता था। फिर इतने सिपाहियों की क्या जरूरत थी ? उन्हें तो दिन में भी गिरफ्तार किया जा सकता था। रात के समय डाका डालने की क्या जरूरत थी ?

"लेकिन गांधीजी की गिरफ्तारी से देश में अशान्ति नहीं फैलनी चाहिए। लड़ाई-झगड़े और खून-खच्चर नहीं होना चाहिए। लेकिन बड़े और छोटे सरकारी अफसरों और कर्मचारियों को नौकरी छोड़ देनी चाहिए। सिपाहियों को भीड़ पर गोली चलाने से इन्कार कर देना चाहिए। वकीलों को वकालत करने से, विद्यार्थियों को कालेज में जाने से और व्यापारियों को विदेशी माल खरीदने से इन्कार कर देना चाहिए। यही मेरी अपेक्षा है। यही मेरा सन्देश है।"

गांधीजी की गिरफ्तारी के बाद जगह-जगह नमक बनने लगा, नमक के गोदामों पर हमला होने लगा। चारों ओर नमक कानून टूटने लगा। विद्यार्थियों ने स्कूल-कालेज छोड़ दिये, वकीलों ने वकालत छोड़ दी। सरकारी नौकरों ने नौकरी छोड़ दी। व्यापारियों ने विदेशी कपड़ा खरीदना छोड़ दिया। सरकार बड़ी परेशान हुई। लोगों में उत्साह फैला। सरकार ने खीझ कर निहत्थे लोगों पर गोलियां और लाठियां बरसाईं। भीड़ पर घोड़े दौड़ाये गए। लोगों को कांटों की झाड़ी में फेंक दिया गया और घसीटा गया।

बा ने जगह-जगह दौरा करके भाषण दिये। अस्पतालों में जाकर घायलों को हिम्मत बंधाई। उन्होंने जनता में आत्म-विश्वास जगाया और उत्साह पैदा किया।

इस दौड़-धूप के कारण बा का स्वास्थ्य गिरने लगा। और वह बीमार हो गईं।

बा सभी बड़े-बड़े आन्दोलनों में जेल भी गईं। सन् १९३२ में वह जेल गईं, सन् १९३३ में वह जेल गईं। १९३९ और १९४२ में भी वह जेल गईं। जेल में वह साथी बहनों को धीरज और उत्साह दिलातीं, वह स्वयं कष्ट उठाकर दूसरी बहनों की सेवा करतीं और स्वयं तकलीफ उठाकर दूसरी बहनों को प्रेरणा देतीं। सन् १९३९ के राजकोट सत्याग्रह में उन्होंने यही किया। १९४२ के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' में भी उन्होंने यही किया।

: १० :

विदा

सन् १९४२ का आन्दोलन शुरू होने के समय कस्तूरबा गांधीजी के साथ ही थीं। उस समय वह काफी कमजोर थीं। बीमारी ने उनके शरीर को जर्जर कर दिया था। लेकिन जब गांधीजी महासमिति के अधि-वेशन में जाने लगे तो बा भी तैयार हो गईं। यह

अधिवेशन बम्बई में हो रहा था। इसमें बड़े महत्त्वपूर्ण फैसले होनेवाले थे।

जब बा और बापू वर्धा से रवाना होने लगे, तो आश्रमवासी उन्हें पहुंचाने गये। वर्धा शहर के लोग उन्हें विदा देने आये। सबों ने कहा—"बा, जल्दी आना।" बा ने कहा—"जल्दी लौटकर आ सकी तो खुशी होगी। फिर मिलना हो सका तो आनन्द होगा।" बा के शब्दों में निराशा थी। उनके शब्दों में अनिश्चय था। मानो बा भविष्य जानती हों।

बम्बई में अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। गांधीजी ने देश को 'करो या मरो' का नारा दिया। उन्होंने कहा—"अंग्रेजों को भारत छोड़ देना चाहिए और देश का शासन देशवासियों के हाथों में सौंप देना चाहिए। अब हम अंग्रेजी शासन को सहन नहीं करेंगे, अब हम अंग्रेजों की हुकूमत में नहीं रहेंगे।"

सरकार ने गांधीजी को गिरफ्तार कर लिया। उसने कस्तूरबा को गिरफ्तार कर लिया। उसने देश के सभी बड़े-बड़े नेताओं को जेल में डाल दिया। बा और गांधीजी को आगा खां के महल में कैद करके रखा गया। आगा खां महल पूना में है। बा और बापू यहां कैदी की तरह जीवन बिताने लगे।

आगा खां महल में पहुंचने के कुछ दिन बाद ही महादेवभाई एकाएक चल बसे। वह शुरू से गांधीजी के निजी मंत्री थे। बा और बापू को इससे बड़ी चोट लगी।

बा ने कहा—"मैं तो महादेव से ज्यादा बूढ़ी हूं। पहले तो मुझे जाना था। महादेव पहले क्यों गया ?" उनके इन शब्दों में बड़ी व्यथा थी। मानो वह मृत्यु के लिए तैयार बैठी थीं। जेल में जो भी मिलने आता उससे कहतीं—"जिन्दा रहूंगी तो फिर मिलूंगी। शायद यह हमारी आखिरी मुलाकात है। शायद हम अब न मिल सकेंगे।"

बा बीमार तो थीं ही, जेल-जीवन ने उनको और कमजोर बना दिया। महादेवभाई की मृत्यु ने उनको और जर्जर बना दिया। दिन-प्रति-दिन उनका स्वास्थ्य गिरने लगा। डाक्टरों ने कहा दवाई देना चाहिए। उन्होंने कहा इन्जेक्शन लगाने चाहिए। लेकिन बा तो उनमें विश्वास नहीं रखती थीं। वह उन्हें व्यर्थ समझती थीं। परिणाम यह हुआ कि उनकी हालत बिगड़ने लगी। वह अधिकाधिक कमजोर होने लगीं।

अन्तिम समय बा ने बापू को पास बुलाया। बापू घूमना छोड़कर बा के पास गये। वह हँसते-हँसते कहने लगे—"तू समझती होगी कि सब सगे-संबंधी आगए इसलिए मैंने तेरी चिन्ता छोड़ दी है। तू यह मत समझ कि सब तेरी सेवा कर रहे हैं इसलिए मैंने तुझे भुला दिया है। ऐसी बात नहीं है, मैं आ गया हूं।"

बापू ने बा का सिर अपनी गोद में ले लिया। बा बोलीं—

"जीवन में हम साथ रहे। हमने साथ-साथ दुख भोगे। साथ-साथ दुख भोगे। लेकिन अब हम अलग हो रहे हैं। मेरे जाने पर शोक मत करना और आंसू मत बहाना। मेरे मरने पर तो खुशी मनाना और लड्डू बांटना। हे राम, गिरधर गोपाल अब अपनी शरण में ले प्रभु।" इतना कहते-कहते बा स्वर्ग सिधार गईं। सब लोग शोक-समुद्र में डूब गए। बापू की आंखें भर आईं। उनके सबसे छोटे बेटे देवदासभाई बा के पैरों से लिपट कर रोने लगे। लेकिन गांधीजी जल्दी ही संभल गए। उन्होंने रामधुन प्रारंभ की। सब लोग रामधुन गाने लगे।

अग्नि-संस्कार से पहले बा के मृत शरीर को स्नान कराया गया। उन्हें बापू के हाथ से कते हुए सूत की साड़ी पहनाई गईं। माथे पर कुंकम लगाया। हाथ और गले में बापू के हाथ के सूत की माला पहनाई गई। जमीन लीप कर चौक पूरा और बा को वहां सुला दिया। मृत अवस्था में भी बा का चेहरा चमक रहा था। ऐसा लगता मानो वह सो रही हैं। वह जगदंबा-जैसी दीख रही थीं।

शव को अग्नि-संस्कार के लिए ले जाया गया। ब्राह्मण ने अग्नि-संस्कार की विधि पूरी करवाई। शव को चिता पर लिटा दिया गया। बापू ने कहा—"अब हमको प्रार्थना करनी चाहिए।" प्रार्थना प्रारंभ हुई। गीता के श्लोकों का पाठ किया गया और कुरान

की आयतें पढ़ी गईं। बाइबिल के कुछ अंश पढ़े गए। फिर उपनिषद् का पाठ हुआ।

प्रार्थना के बाद मृत शरीर पर चन्दन की लकड़ियां रख दी गईं। उस पर घी डाला गया। गांधीजी ने देवदासभाई से कहा—"बा का अन्तिम संस्कार तुम करो।" देवदासभाई ने हाथ में अग्नि ली। उन्होंने चिता की तीन बार प्रदक्षिणा की। गोविन्द-गोविन्द का उच्चारण किया और चिता को अग्नि दी। चिता धक्-धक् करके जलने लगी। आंखों में आंसू भरे सब लोग चिता को देखते रहे। तीसरे दिन अस्थि चुन लेने के बाद बापू ने बा की समाधि पर छोटे-छोटे शंखों से लिखा—'हे राम'।

: ११ :

बा की दिनचर्या

बा भारतीय स्त्री की जीती-जागती प्रतीक थीं। वह सेवा और त्याग की मूर्ति थीं। बापू की सेवा उनका स्वधर्म था। इसी स्वधर्म में वह रात दिन लगी रहती थीं। इसीकी उन्हें दिन-रात चिन्ता रहती थी।

वह प्रतिदिन सुबह साढ़े तीन बजे उठती थीं। शौचादि से निवृत्त होकर प्रार्थना करती थीं। प्रार्थना के बाद बापू के लिए गरम पानी और शहद तैयार करती

थीं। बापू का सारा काम वह स्वयं करती थीं; लेकिन यदि कोई स्वेच्छा से बापू का काम करना चाहता तो उसे भी मना नहीं करती थीं। वह उसे भी बापू की सेवा का अवसर देती थीं।

यदि बापू की सेवा की जिम्मेदारी दूसरे ले लेते तो भी वह निश्चिन्त नहीं होती थीं। वह देखती रहती थीं कि काम ठीक तरह हो रहा है या नहीं। बापू के पास सब चीज ठीक समय पर पहुंच रही है या नहीं और बापू का सारा काम ठीक समय पर हो रहा है या नहीं। यदि चीजें ठीक तरह नहीं बनतीं तो वह स्वयं ठीक तरह बनातीं। यदि काम ठीक समय पर नहीं होता तो वह जल्दी करतीं। यदि बरतन ठीक तरह नहीं साफ होते तो वह स्वयं करतीं। यदि वे ठीक जगह पर नहीं रखे जाते तो उन्हें स्वयं रखतीं।

सात बजे बापू घूमने निकलते। उस समय बा स्नान करतीं। उसके बाद वह अपना पूजा-पाठ करतीं। उनकी पूजा एक घंटे तक चलती थी। पूजा के बाद रामायण और गीता का पाठ करतीं।

पूजा से निबटकर वह रसोईंघर में जातीं। रसोईं-घर में उनको गन्दगी और अव्यवस्था पसंद नहीं थी। गांधीजी के लिए भोजन वह स्वयं बनातीं। यदि भोजन कोई दूसरा बनाना चाहता तो वह स्वयं वहां खड़ी रहतीं और देखती रहतीं कि भोजन ठीक तरह बन रहा है या नहीं। रोटियां ठीक तरह बनी और सिंकी हैं या नहीं।

वह सब एक ही आकार की हैं या नहीं और ठीक तरह डिब्बे में रखी गई हैं या नहीं।

भोजन बनाने में बा बड़ी निपुण थीं। उनकी बनाई हुई रोटियां एक ही आकार की होती थीं। वे न जली होतीं, न कच्ची रहती थीं। इसीलिए बापू उनकी बनाई हुई रोटियां तुरन्त पहचान लेते थे।

भोजन की घंटी बजते ही सब लोग भोजनालय में जाते। बा स्वयं गांधीजी को परोसती थीं, उसके बाद वह मेहमानों को परोसती थीं। जबतक बापू भोजन करते वह वहां बैठी रहतीं और पंखे या रूमाल से मक्खी उड़ाती रहतीं।

भोजन के बाद जब बापू अपने कमरे में जाते तब वह भी भोजन करके बापू के कमरे में जातीं। बापू तब अखबार पढ़ते और बा उनके तलवे में मालिश करतीं। अखबार पढ़ते-पढ़ते बापू की आंख लग जाती। और बा अपने कमरे में चली जातीं। थोड़ी देर आराम करके हाथ-मुँह धोतीं और अखबार पढ़तीं।

गुजरात के समाचारों में उनकी बड़ी दिलचस्पी रहती थी। लेकिन वह देश की खबरें भी पढ़ती थीं। बापू के लेख और भाषण भी पढ़ती थीं। लड़ाई के समाचार से उनको बड़ा दुख होता था। अकाल और महामारी के समाचार से उनको पीड़ा होती थी। कहीं गोली-बारी और लाठी-चार्ज के समाचार होते तो उससे उनको बड़ी वेदना होती। उनकी करुणधारा सारे देश

पर बहती थी। उनका मातृ-हृदय सारी मानव-जाति के दुख से दुखी होता था।

अखबार पढ़कर वह चर्खा कातने बैठतीं। वह प्रतिदिन चार-पांच सौ तार कातती थीं। चर्खा कातने में वह कभी आलस्य नहीं करती थीं। शाम के चार बजते ही रसोईंघर में वह फिर चली जातीं। वहां वह शाम का भोजन बनातीं। यदि भोजन कोई और बना रहा होता तो वहां देख-रेख करतीं। वह शाम को भोजन नहीं करती थीं। लेकिन शाम के भोजन के समय बापू के पास ही रहती थीं।

भोजन के बाद बापू घूमने जाते और बा आश्रम के रोगियों के पास जातीं। उनके पास थोड़ी-थोड़ी देर बैठतीं। रोगियों के पास थोड़ी देर बैठ कर वह भी घूमने जातीं। जब बापू आते हुए दिखाई देते तो वह भी उनके साथ लौट आतीं।

शाम की प्रार्थना में बा कभी गैरहाजिर नहीं रहती थीं। वह प्रतिदिन प्रार्थना में सम्मिलित होतीं और बड़े भक्तिभाव से प्रार्थना करतौं। प्रार्थना के बाद आश्रम की बहनों से बातचीत करतीं। लेकिन यह बातचीत बहुत थोड़ी देर की ही होती थी। उसके बाद बापू का सोने जाने का समय होते ही बापू के सिर में मालिश करने चली जातीं। मालिश का काम वह स्वयं करती थीं। जब गांधीजी सो जाते तो वह भी सोने चली जाती थीं।

बापू की सेवा बा की दिनचर्या का प्रमुख कार्य था।

बापू चाहे जेल में हों चाहे आश्रम में, बा का यही कार्य-क्रम चलता रहता था। बापू चाहे यात्रा में होते या किसी के घर मेहमान होते, बा का यही कार्य-क्रम रहता था। बापू की सेवा से उनको न थकावट होती थी न परेशानी। बापू की सेवा से न उनका दिल भरता था, न उनको किसी प्रकार का अभिमान होता था।

जब बापू तूफानी दौरा करते तब भी बा उनके साथ ही रहती थीं। वह स्वयं खाना बनातीं और खिलाती थीं। वह स्वयं मालिश करतीं और कपड़े भी धोती थीं।

समय की पाबन्दी बा का बहुत बड़ा गुण था। वह ठीक समय पर सोतीं और ठीक समय पर उठती थीं। वह ठीक समय पर अपना और बापू का काम किया करती थीं। उन्हें अपने काम में भले ही देर हो जाय पर बापू के काम में उन्हें देरी सहन नहीं होती थी।

उनकी मृत्यु पर गांधीजी ने कहा था—"वह खाना लाने में एक मिनट भी देर नहीं करती थीं। यदि कोई देर करता तो वह बिगड़ उठती थीं।" बापू के समय का उनको बहुत खयाल रहता था। उनका एक-एक मिन्ट वह बचाना चाहती थीं। हर क्षण वह बापू को आराम पहुंचाना चाहती थीं।

: १२ :

सहधर्मिणी

कस्तूरबा गांधीजी की सहधर्मिणी थीं। वह इच्छा से गांधीजी के पीछे-पीछे चलीं और अनिच्छा से भी। वह ज्ञान से गांधीजी के पीछे-पीछे चलीं और अज्ञान से भी। गांधीजी के पीछे चलने में ही उन्होंने अपने जीवन की सार्थकता समझी।

उन्होंने गांधीजी के कार्यों और विचारों में योग दिया। गांधीजी ने ब्रह्मचर्य पालन का निश्चय किया और कस्तूरबा तुरन्त तैयार हो गईं। गांधीजी ने सादगी से रहने का इरादा किया और कस्तूरबा तुरन्त तैयार हो गईं। गांधीजी ने जेल जाने का विचार किया और कस्तूरबा तुरन्त तैयार हो गईं। गांधीजी ने बड़े-बड़े उपवास करने का फैसला किया और कस्तूरबा ने कोई विरोध नहीं किया। बापू के पीछे-पीछे चलने में उन्हें तलवार की धार पर चलना पड़ा। बापू के पीछे-पीछे चलने में उन्हें भूकम्प के धक्के सहने पड़े। बापू के पीछे-पीछे चलने में उन्हें खौलते हुए लावा पर चलना पड़ा। लेकिन बा कभी विचलित नहीं हुईं। बा कभी परेशान नहीं हुईं। वह अपार निष्ठा और अपार आत्म-बल से चलती रहीं।

बा बापू की संकट की साथिन थीं। अच्छे समय में वह भले ही दूर रहतीं, पर संकट के समय तो गांधीजी के

पास आ जाती थीं। साबरमती आश्रम की बात है। बापू सोये हुए थे। पास ही बा भी सो रही थीं। लगभग ढाई बजे गांधीजी उठे और चल पड़े। बा की नींद खुली। बापू को जाता हुआ देखकर वह भी चल पड़ीं। सड़क पर कोई आदमी रो रहा था। बापू वहीं पहुंचे। उसे बिच्छू ने काट खाया था। जब बापू लौटे तो रास्ते में बा मिलीं। बापू ने पूछा—"क्या तुम समझीं कि मैं भाग जाऊंगा ?"

एक और घटना है। सन् १६२६ में गांधीजी कौसानी ग्राम में रह रहे थे। यह ग्राम हिमालय की तराई में है। यहां बड़ी सरदी पड़ती है। हमेशा कुहरा छाया रहता है। जंगली जानवर भी काफी हैं। गांधीजी तो हमेशा खुली जगह में सोते हैं। लोगों ने मना किया पर वह तो खुले में ही सोये। रात के समय एक बाघ का बच्चा आया और वह गांधीजी के बिछौने के पास तक आकर लौट गया। जिन लोगों ने उसे देखा वे बड़े परेशान हुए। उन्होंने यह बात अपने साथियों से कही। उन्होंने यह बात बा और बापू से भी कही। सबने बापू से अन्दर सोने का आग्रह किया लेकिन बापू ने किसी की बात नहीं मानी और दूसरे दिन भी वह खुले में ही सोये। बा यह सब कैसे सहन करतीं ? उन्होंने भी अपना बिस्तर बाहर ही लगाया।

एक घटना बनारस की है। गांधीजी बनारस गये थे। यहां के सनातनी गांधीजी से बड़े नाराज थे। एक आम सभा में बड़ा होहल्ला मचा। बा सभा में मौजूद नहीं थीं।

हुल्लड़ का समाचार पाते ही वह सभा-स्थल की ओर चल पड़ीं। उनके साथ नेहरूजी और देवदासभाई भी चल पड़े। लेकिन रास्ते में उपद्रवी भीड़ के कारण मोटर रोकनी पड़ी। दोनों मोटर से उतरे। वे लोग पैदल ही चलने लगे। लेकिन भीड़ बहुत थी। तीनों एक दूसरे से अलग हो गए। इसी समय पत्थर भी बरसने लगे। किसी ने कहा—"आप उधर मत जाइये। उधर जाना खतरनाक है।" बा ने कहा—"जब बापू पर पत्थर बरस रहे हों, तब मैं यहां कैसे रह सकती हूं।" और वह किसी तरह बापू के पास पहुंच ही गईं।

उपवासों के समय बा बापू के पास रहीं। ये बड़ी कड़ी परीक्षा के दिन होते थे। वह दिल कड़ा करके बापू की सेवा और सार-संभाल करती रहतीं। ऐसे कठिन दिनों में उन्होंने हमेशा मजबूती दिखाई।

बा ने अपने को गांधीजी के साथ एकरूप बना दिया था। उन्होंने गांधीजी की रुचि को अपनी रुचि बना लिया। उन्होंने गांधीजी की पसन्द को अपनी पसंद बना लिया। साबरमती में हमेशा चोर आते रहते थे। एक दिन वे बा की दो पेटियां ले गये। बापू बोले—"तुम दो पेटी कपड़ों का क्या करोगी? तुम्हारे लिए तो ३-४ साड़ियां ही काफी हैं। अधिक कपड़ों का मोह छोड़ दो।" बा ने कपड़ों का मोह छोड़ दिया। वह थोड़े-से-थोड़े कपड़ों से ही काम निकालने लगीं। उनकी यह सादगी इतनी बढ़ी कि पीछे से गांधीजी ने स्वयं कहा—"बा के पास

कम-से-कम सामान रहता है। उनकी जरूरतें कम-से-कम हैं, इस बात में वह हम सबको हराती हैं।"

सन् १९२० तक बा मिल के कपड़े पहनती थीं। उन दिनों वह पारसी पोशाक में रहती थीं। लेकिन १९२० के बाद वह खादी पहनने लगीं। पहले-पहल उनको अवश्य अटपटापन लगा। लेकिन शीघ्र ही उन्होंने अपने को खादी के अनुकूल बना लिया। जब वह आगा खां महल में कैद थीं, तब उन्होंने एक बहन से कहा था—"मेरी अमुक साड़ी अमुक बहन को दे देना। अब मैं अपने पास कोई कपड़ा नहीं रखना चाहती। हां, बापू के हाथ के सूत की साड़ी यहां पहुंचा देना। उसीको पहन कर मुझे विदा होना है; उसीको पहन कर मुझे मरना है।" बा उसी साड़ी को पहन कर विदा हुईं।

अस्पृश्यता मिटाने की बात बा ने बहुत दिनों के बाद मानी। इस सम्बन्ध में गांधीजी को बहुत समझाना पड़ा। जब वह थक गये तो एक बार उन्होंने कहा—"हरिजनों को रसोईंघर में दाखिल करने की बात बा को समझाना कठिन है।" लेकिन इसके बाद ही वह बोले—"फिर भी यदि मुझे जन्म-जन्मान्तर के लिए कोई साथी पसन्द करना पड़े तो मैं बा को ही पसन्द करूंगा।" बापू के इन शब्दों में बा की महानता छिपी पड़ी है।

लेकिन अस्पृश्यता के बारे में भी बा का आग्रह बहुत दिनों तक नहीं रहा। धीरे-धीरे यह आग्रह भी

मिट गया। एक बार नागपुर के हरिजनों ने बापू के विरुद्ध सत्याग्रह किया। उनका कहना था कि मध्य प्रदेश के मंत्रि-मण्डल में एक हरिजन मंत्री होना चाहिए। उन्होंने प्रतिदिन पांच-पांच सत्याग्रही भेजना प्रारंभ किया। वे बापू की कुटिया के सामने बैठते; वे २४ घंटे तक उपवास रखते और लौट जाते। प्रतिदिन एक नया जत्था आता।

गांधीजी ने सत्याग्रहियों का स्वागत किया। उन्होंने उन्हें बैठने और रहने की सहूलियत कर दी। उन्होंने कहा—"आप अपने लिए बैठने की जगह चुन लीजिये।" हरिजनों ने बा के कमरे पसन्द किये। बा के पास दो कमरे थे। एक बड़ा एक छोटा। बड़ा सोने-बैठने के लिए। छोटा नहाने व कपड़े बदलने के लिए। बापू ने कहा—"अपना बड़ा कमरा हरिजनों को बैठने के लिए दे दोगी न?" बा ने कहा—"ये तो आपके बेटे हैं न? इन्हें अपनी ही कुटिया में जगह क्यों नहीं देते?" बापू बोले—"हां, ये मेरे लड़के हैं। लेकिन क्या मेरे लड़के तुम्हारे लड़के नहीं हैं?" बा हँस पड़ीं। उन्होंने हरिजनों को अपने कमरे में रहने की इजाजत दे दी और उनके लिए पानी आदि का प्रबन्ध भी कर दिया।

उम्र के साथ देश का दुख बा का दुख बन गया। सभी दुखी लोगों पर उनकी करुणा-धारा बह उठती। अन्तिम दिनों में तो उनका हृदय बड़ा विशाल बन गया था। मानो वह सारे देश की मां बन गई थीं। अन्तिम

समय डा० गिल्डर ने उनसे कहा—"आप मरने की बात क्यों सोचती हैं ? अभी तो आपके लड़के आनेवाले हैं। आज देवदास आयेंगे। रामदास और मणिलाल भी आ रहे हैं। इन सबसे मिलना है न ?"

बा मुस्कराईं और गंभीर होकर बोलीं—"उन्हें भी क्यों बुलाते हो ? आप सब भी मेरे ही तो लड़के हैं न ? मर जाऊं तो आप ही जला देना।" इन शब्दों में मानों राष्ट्रमाता ही बोल रही थीं। इन शब्दों में मानो उनका वात्सल्य ही बोल रहा था।

यही वात्सल्य उन्हें सीता की तरह वन्दनीय, यही मातृत्व उन्हें सावित्री की तरह पूजनीय और यही धर्मभावना उन्हें ऋषिपत्नी अनुसूया-अरुन्धती की तरह स्मरणीय बना रही हैं।

●

